तत्त्व-चर्चा

[डा० के० जी० रामाराव तथा डा० हर्बर्ट टिसि के प्रश्नों का
आचार्य श्री तुलसी द्वारा उत्तर]

प्रकाशक :
आदर्श-साहित्य-संघ
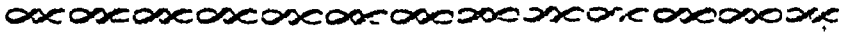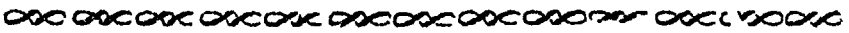
दो शब्द

दुःख-जिहासा और सुख-लिप्सा मानव का चरम लक्ष्य है। संसार के दृष्ट पदार्थ सुख के हेतु माने जाते हैं किंतु वे वास्तविक नहीं हैं। उनसे मिलनेवाला सुख आशाश्वत और काल्पनिक है। उसमें ऐकान्तिकता-आत्यन्तिकता नहीं है। तब सच्चा सुख क्या है, इसकी खोज में प्रवृत्ति होती है—तत्त्वज्ञान का प्रवेश द्वार खुलता है। उससे तथ्य-अतथ्य का ज्ञान होता है। वास्तविक-काल्पनिक की सूझ आती है। सहज-कृत्रिम का भान होता है।

इससे तत्त्वज्ञान का महत्त्व है। भगवान् महावीर के शब्दों में 'पढ़मं नाणं तओ दया' आदि पद इसी की पुष्टि करते हैं।

जैन दर्शन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' के अनुसार ज्ञान व चर्या दोनों को मोक्ष के साधन मानता है। शुद्ध चर्या के लिये शुद्ध ज्ञान अपेक्षित है। शुद्ध चर्या के बिना कोरा ज्ञान भार है। यह अेक अनूठा समन्वय है। ऊंचे जीवन का सफल साधन है। भारतीय संस्कृति का सात्त्विक अंग है।

आचार्य श्री तुलसी इसके मूर्तिमान् आदर्श हैं। तत्त्वज्ञान, सम्यक् चरित्र आपके जीवन में ओतप्रोत हैं। जन-जीवन में इनका अधिक से अधिक प्रसार हो, यह आपकी भावना है। तत्त्व

विवेचना को लेकर समय-समय पर आपके सम्पर्क में बहुत से भारतीय व विदेशी लोग आते रहते हैं, आप उनकी तत्त्वजिज्ञासा पूरी करते हैं। आनेवालों में साधारण और विशेष सब तरह के लोग रहते हैं। आपकी उत्तर देने की शैली अनूठी है। क्या विद्वान् क्या साधारण, सब को उससे संतोष होता है।

अभी कुछ दिन पहिले दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डाक्टर के० जी० रामाराव M. A. Ph. D. व आस्ट्रिया (वियेना) के यशस्वी पत्रकार डाक्टर हर्बर्ट टिसि (Dr. Herbert Tichy) M. A. D. Phil. आचार्य श्री के सम्पर्क में हांसी आये। उनके आचार्य श्री के साथ जो तात्त्विक प्रश्नोत्तर हुए, प्रस्तुत पुस्तिका में उन्हीं का संक्षिप्त संकलन है।

डा० के० जी० रामाराव जबलपुर से ता० २५ को हाँसी पहुँचे। ता० २६,२७,२८,३० सितम्बर तक आचार्य श्री के सम्पर्क में रहे। विविध विषयों पर तत्त्व-विवेचना की।

डा० हर्बर्ट टिसि आस्ट्रिया के सुप्रसिद्ध पत्रकार और लेखक हैं। इन्होंने जर्मन भाषा में विविध विषयों पर ७ पुस्तकें लिखी हैं। भ्रमण और धर्म विषय में इनकी विशेष अभिरुचि है। पहले भी ये दो बार भारतवर्ष आ चुके हैं। पहले पहले सन् १९३३ ई० में ये जर्मनी से भारतवर्ष साइकिल पर आये। दूसरी बार जब भारत आये, तब इन्होंने कैलाश यात्रा की थी। इस पर इन्होंने जर्मन भाषा में एक पुस्तक भी लिखी जिसका अंग्रेजी अनुवाद भी हो चुका है।

इसबार इन्होंने केदारनाथ-बद्रीनाथ की पैदल यात्रा की। भारतीय धर्मों पर इनका एक पुस्तक लिखने का विचार है। जैनधर्म के विषय में विशेष जानकारी करने के उद्देश्य से इनका ता० ३ अक्तूबर को हांसी आना हुआ। ता० ३,४,५,६,७ तक हांसी ठहरे। आचार्य श्री के साथ विविध विषयों पर वार्तालाप किया। तेरापंथ संघ की कार्यप्रणाली, आचार-परम्परा, पाठ्य-परिपाटी आदि का अध्ययन किया।

इन दोनों विद्वानों का आशय था—आज संसार अनात्म-जड़ को देखता है—अपने को नहीं। भौतिक विज्ञान उसके जीवन का चरम लक्ष्य है, आत्मज्ञान नहीं। यही दुःख-परम्परा का कारण है।

आचार्य श्री के साथ और भी जिन जिन लोगों का सम्पर्क होता है उनके साथ जो तत्त्व-विवेचना होती है उसका संकलन होता रहता है। जयपुर, अलवर, भरतपुर, आगरा, मथुरा, दिल्ली, रोहतक व भिवानी आदि में हुए तत्व-विवेचनों के संकलन भी सुरक्षित हैं।

प्रस्तुत संकलन एक नमूने के रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है तत्त्व-जिज्ञासु पाठकों के लिये यह लाभजनक सिद्ध होगा।

आदर्श साहित्य संघ,
सरदारशहर
अ० का० हाँसी (हिसार)
ता. १४-१०-५०

—प्रकाशन मंत्री

तत्त्व-चर्चा

: १ :

ता० २६ के दोपहर को दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉक्टर के० जी० रामाराव एम्० ए० पी—एच० डी० जबलपुर से आचार्य श्री के दर्शनार्थ आये और मध्यान्होपरान्त १॥ बजे से ३। बजे तक डॉक्टर रामाराव का आचार्य श्री से निम्नाङ्कित वार्तालाप हुआ :—

डॉ. रामाराव—मेरे जीव है, उसी तरह दूसरे के भी जीव होगा, इस विकल्प को छोड़कर जीवमात्र ही सदृश हैं, इस विषय में आपके क्या विचार हैं ?

आचार्य श्री—जैन शास्त्र प्राणीमात्र को समान समझते हैं, जीवत्व की दृष्टि से किसी को भी छोटा बड़ा नहीं। दुर्बलता आत्मा पर चिपके हुए आवरणों से है। आत्मत्व की दृष्टि से सब आत्माएँ समान हैं। जैन आगमों में तो यहाँ तक माना गया है कि आज जो वानस्पतिक जीव है— वह अगले जन्म में मनुष्य भी बन सकता है।

रामाराव—आत्मा कुछ ऊँची उठ जाये तो फिर उसका वहाँ से पतन नहीं होता है, ऐसी मेरी धारणा है, आपका कैसा मन्तव्य है ?

आचार्य श्री—यदि गति में ह्रास या पतन न आये तब तो आत्मा ऊँची उठने के बाद पतित नहीं होगी किन्तु जिस गति से वह ऊँची उठ रही है, उसको निरुद्ध कर अन्य मार्ग ले ले तब उसका पतन संभव्य है। जैन सिद्धान्तों में यह माना गया है कि मोक्ष प्राप्त करने से पहले जीव को १४ स्थान—गुणस्थान पार करने होते हैं। गुणस्थानों का अर्थ है—क्रमिक विकास की अवस्थाएँ। गुणस्थान विवेचन में यहाँ तक बताया गया है—आत्मा ११ वीं अवस्था (गुणस्थान) तक पहुँच कर भी नीचे गिर सकती है। बारहवीं अवस्था में वीतरागता आ जाती है। वहाँ से पतन नहीं होता। आत्मा के पतन का मुख्य कारण राग-द्वेष है। कितनी ही प्रवृत्तियाँ—क्रियाएँ की जायें जबतक राग-द्वेष अवशिष्ट रहता है तबतक पतन की सम्भावना रहती है। जब राग-द्वेष को विनष्ट कर, दिया जायगा तब यह खतरा नहीं रहेगा। १२ वीं विकासावस्था के बाद १३ वीं अवस्था [संयोगी केवली गुणस्थान] सर्वज्ञावस्था है और चौदहवीं अयोगी कैवल्यावस्था है।

आचार्य श्री ने आत्मा के पतनोत्थान-विवेचन के प्रसंग में यह भी बताया कि जीव एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रियादि (ऐन्द्रिय अपेक्षा से विकसित) योनियों में भी जा सकता है और द्वीन्द्रियादि विकसित योनियों से एकेन्द्रियादि में भी जा सकता है।

रामाराव—आज मैंने यह जाना कि यदि गति में शैथिल्य हो तो जीव का विकास के बाद ह्रास भी हो सकता है।

रामाराव—जीवन सक्रियता का प्रतीक है (Life is activity)। क्रमशः वैराग्य का होना कर्म-विमुखता है, अतः वैराग्य तथा जीवन का सामञ्जस्य कैसे ?

आचार्य श्री—जिस रूप में आप जीवन को सक्रिय बतलाते हैं जीवन की वे क्रियाएँ सोपाधिक हैं। जैसे, भोजन करना तब तक आवश्यक है जब तक भूख का अस्तित्व हो। जिन कारणों से ये सोपाधिक सक्रियताएँ रहती हैं, वे कारण यदि नष्ट हो जायें तो फिर उनकी (सक्रियताओं की) आवश्यकता नहीं रहेगी। आत्मा की स्वाभाविक सक्रियता है—ज्ञान में—निजस्वरूप में रमण करना जो हर क्षण रह सकती है। इस रूप में सक्रिय रहती हुई आत्मा अन्यों से (आत्म-रमण व्यतिरिक्त अन्य क्रियाओं से) अक्रिय रहती है। सोपाधिक सक्रियता वैकारिक या वैभाविक है। उसे मिटाने के लिये त्याग, तपस्या आदि की आवश्यकता होती है।

अस्तु, सब से पहले अपने आप को जानना चाहिये। उसकी वास्तविक सक्रियता को समझना चाहिये। मैं तो बहुधा कहा करता हूँ—विज्ञान अधूरा है, संसार भर को वह जानने का प्रयत्न करता है किन्तु अपने को नहीं (आत्मा को नहीं)।

रामाराव—साइकोलोजी (मनोविज्ञान) का भी यही दुर्भाग्य है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने भी ऐसा ही कहा है—"अपने आपको जानो।"

आचार्य श्री—जो आत्म स्वरूप को—परमात्मतत्त्व को—मोक्ष को नहीं जानता उसकी सम्मति व असम्मति की क्या कीमत है,

ऐसा एक प्राचीन विचारक ने कहा है—जो वस्तुतः तथ्यपूर्ण है ।

रामाराव—समाज-प्रवृत्ति का हेतु है दूसरों के लिये जीना। यदि प्रत्येक व्यक्ति वैराग्य अंगीकार कर ले तो वह एक प्रकार का स्वार्थ होगा। स्वार्थपरता दो प्रकार की है– एक तो यह कि अपने लिये धन आदि सांसारिक सुख-साधनों के संचय का प्रयत्न करना। दूसरी यह कि दूसरों की चिन्ता न करते हुए केवल अपनी मुक्ति की लालसा करना। इस स्थिति में (केवल अपनी मुक्ति की लालसा रखने से, क्या जीवन का ध्येय पूर्ण हो सकता है?

आचार्य श्री—दूसरे प्रकार की स्वार्थपरता जो आपने बताई वस्तुतः वह स्वार्थपरता नहीं है। यदि सभी व्यक्ति उसपर आजायें तो मेरे खयाल में उसमें दूसरों की हानि की कोई सम्भावना नहीं होगी। सब विकासोन्मुख होंगे। वह स्वार्थ नहीं, परमार्थ होगा। जब कि हम मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन-विकास करने का जन्म-सिद्ध अधिकारी है, जब कि वह अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, तब यदि अकेला अपने आप को उठाने की—आत्मविकास करने की चेष्टा करता है, तो उसका यों करना स्वार्थ कैसे माना जायेगा?

समाज पर जिनका वजन है, वे कुछ न करें तो कहा जा सकता है कि समाज से ये इतना लेते हैं मगर कुछ नहीं देते। किन्तु जिनका समाज से कोई सम्बन्ध नहीं—उनके लिये यह आवश्यक नहीं है। वे सामाजिकता से तटस्थ रहते हैं। वे अपने लिये जो कुछ करते हैं वह तत्त्वतः परमार्थ ही है, तिस पर भी वे समाज का काम भी करते हैं, इसीलिये तो हमारे साधु आपके जबलपुर

तक पहुँचे हैं। जीवन सुधार व आत्म सुधार का सन्देश देना समाज उत्थान का ही प्रयत्न है, यह स्वार्थशून्यता है। वैराग्यवान् नियमतः ऐसा प्रयास करे—यह आवश्यक नहीं। किन्तु ऐसा प्रयास करना भी एक तरह की साधना है। निष्कर्षतः हमारी यह मान्यता है कि व्यक्ति-विकास ही सब सुधारों की रीढ़ है।

रामाराव—क्या पुण्य-कर्म मोक्ष का रास्ता—मोक्ष की ओर ले जाने वाला नहीं है ?

आचार्य श्री—पुण्य शुभ कर्म है। कर्मबन्धन है, अतः पुण्य भी मोक्ष में बाधक है। कर्म शब्द के दो अर्थ हैं : (१) क्रिया (२) क्रिया के द्वारा जो दूसरे विजातीय पुद्गल आत्मा के साथ सम्बद्ध हो जाते हैं—चिपक जाते हैं—वे भी कर्म कहे जाते हैं। अच्छे कर्म पुण्य और बुरे कर्म पाप कहलाते हैं। बुरे कर्म तो स्पष्टतः मोक्ष में बाधक हैं ही। अच्छे कर्मों का फल दो प्रकार का है—उनसे पुराने बन्धन टूटते हैं, किन्तु साथ साथ में शुभ पुद्गलों का बन्ध भी होता रहता है। बन्ध मोक्ष में बाधक है।

रामाराव—अच्छे कर्मों से बंधनों के टूटने के साथ साथ पुनः बन्धन किस प्रकार ?

आचार्य श्री—उदाहरण स्वरूप बगीचे में (आप) घूमने (हवाखाने) जायेंगे वहाँ (इससे) अस्वस्थता के पुद्गल दूर होंगे और स्वस्थता के अच्छे पुद्गल समाविष्ट होंगे—अच्छी क्रिया में मुख्य फल आत्मशुद्धि है—किन्तु चूँकि जब तक उस क्रिया में राग-द्वेष का अंश समाविष्ट रहता है, उस में बन्धन भी है। गेहूँ की खेती की जाती

,है गेहुंओं के साथ चारा या भूसा भी पैदा होता है। बादाम के साथ छिलके भी पैदा होते हैं। जब तक वीतरागता नहीं आयेगी तब तक की अच्छी प्रवृत्ति यद् किञ्चित् अंश में राग-द्वेष से सर्वथा विरहित नहीं होगी, अतः बन्धन होता रहेगा।

रामाराम—गृहस्थों के लिये कुछ न कुछ करना तो आवश्यक है ही?

आचार्य श्री—कुछ न कुछ करना तो साधुओं के लिये भी आवश्यक है। वे भी सत्प्रवृत्ति करते हैं, जिससे पूर्व-कर्मों के बन्धन टूटते हैं, और किञ्चित् रूप में बन्धन भी होता रहता है।

रामाराव—बन्धन से छुटकारा कैसे हो?

आचार्य श्री—ज्यों ज्यों कषायावस्था का शमन होता रहेगा त्यों त्यों जो क्रियाएं होंगी उनमें बन्धन कम होगा—हल्का होगा—आत्मा ऊंची उठती जायेगी। एक अवस्था ऐसी आयेगी जिसमें सर्वथा बंधन नहीं होगा, क्योंकि उसमें बंधन के कारणों का अभाव होगा।

रामाराव—निष्काम भाव से कर्म करने से बन्धन कम होगा?

आचार्य श्री—निष्काम भावना के साथ आत्म-अवस्था भी शुद्ध होनी चाहिये। बहुत से लोग कहने को कह देते हैं कि वे निष्काम कर्म करते हैं, किन्तु जब तक आत्म अवस्था विशुद्ध नहीं होती तब तक वह निष्कामता नहीं कही जा सकती।

रामाराव—मेरी समझ में ज्यों ज्यों अनासक्ति बढ़ाते जायेंगे, त्यों त्यों हम उठेंगे?

आचार्य श्री—आत्म-अवस्था की शुद्धि के साथ साथ ·

रामाराव—साइकोलोजी (मनोविज्ञान) का विचार-क्षेत्र मानसिक क्रिया से ऊपर नहीं जाता। आत्मा के साथ मन का कैसा सम्बन्ध है? आपके विचार इस विषय में क्या हैं?

आचार्य श्री—आत्मा की मानसिक, वाचिक व कायिक क्रिया तो हैं ही। इनके अतिरिक्त अध्यवसाय या परिणाम नाम की एक सूक्ष्म क्रिया भी है। स्थावर जीवों के मन नहीं होता, किन्तु उनके भी वह सूक्ष्म क्रिया होती है, उसे योग लेश्या आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

रामाराव—जिनके मन नहीं होता, क्या उनके आत्मा होती है।

आचार्य श्री—हाँ, आत्मा के आलोचनात्मक ज्ञान के साधना का नाम ही मन है। जिस प्रकार पाँचों इन्द्रियाँ ज्ञान का साधन हैं उसी प्रकार मन भी। यदि दूसरे शब्दों में कहा जाये तो आत्मा की बौद्धिक क्रिया क्रिया का नाम मन है। जिनकी बौद्धिक क्रिया अविकसित होती है उन्हें अमनस्क कहा जाता है; अर्थात् उनके मन नहीं होता?

रामाराव—क्या इन्द्रियों की प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति से आत्मा मुक्ति पाती है?

आचार्य श्री—प्रवृत्ति दो प्रकार की है–सत्प्रवृत्ति, तथा असत्-प्रवृत्ति। सत्प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों आत्ममुक्ति की साधनभूत हैं।

रामाराव—मनोविज्ञान ऐसा मानता है कि विचार-शक्ति में मनुष्य कार्यप्रवृत्ति से (सतत चेष्टा से) विकास कर सकता है। किन्तु

कुछ बातें ऐसी होती हैं जो संस्कारलभ्य हैं, मनोविज्ञान में विचार-धारा के तीन प्रकार माने हैं।

१—माता पिता की अपनी सन्तति के प्रति जैसी रक्षात्मक भावना होती है, वैसी भावना रखना, और दूसरों से ऐसी ही रक्षात्मक भावना की मांग करना। २—बुरी चीजों से नफरत करना व उन्हें छोड़ने की प्रवृत्ति करना। ३—उत्तेजक भावना—काम-क्रोध वासना आदि। ये तीनों भावनाएँ स्वाभाविक शक्तियाँ (Energies) हैं। इनको सरलतया मिटाया नहीं जा सकता। इनको दूसरी ओर लगाया जा सकता है, अर्थात् दूसरे मार्ग पर ले जाने की कोशिश की जा सकती है। स्कूलों में चरित्रगठन की शिक्षा के लिये यह तरीका अख्तियार किया जाता है कि पहली को प्रोत्साहन दिया जाये और तीसरी को रोकने की कोशिश की जाय, क्या यह ठीक है?

आचार्य श्री—तीसरी को रोकने का प्रयास करना बहुत ठीक है। पहली में प्रवृत्त करने की या प्रोत्साहन देने की प्रेरणा एक सामाजिक चीज है। जो दूसरी विचार-धारा है, उसको प्रश्रय देना—बढ़ावा देना उत्तम है। जैसा कि मैंने बताया—पहले प्रकार की विचार-धारा सामाजिक है—दूसरों को साहाय्य देना, रक्षा करना सामाजिक प्रवृत्तियाँ हैं। किन्तु कुछ लोग इनको परम लक्ष्य मान लेते हैं। पहली प्रवृत्ति के लिये शिक्षा देना सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है, पर कमी यही है कि आध्यात्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। जब तक आध्यात्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, तब तक वह (सामाजिक) शिक्षा भौतिकता में परिणत हो जायेगी। जैसे उदाहरण स्वरूप—यदि यों शिक्षा दी जाये कि क्रोध इसलिये नहीं करना चाहिये कि इससे

आत्मा का पतन होता है तो यह शिक्षा कितनी प्रभावकारी हो सकती है !

भारत सरकार कहती है—अन्न के बचाव के लिये उपवास करो। मैं कहूँगा—आत्मशुद्धि के लिये उपवास करो—यदि यों प्रचार किया जाये तो अन्न स्वयं बच जायेगा—यह तो गौण साध्य है। प्रत्येक कार्य का लक्ष्य अध्यात्मवाद रहना चाहिये।

छात्रों से पूछा जाता है—अध्ययन क्यों करते हो ? वे कहेंगे—आजीविका के लिये। शायद ही कोई कहे—आत्मशुद्धि के लिये, ज्ञानार्जन के लिये। मेरा दृष्टिकोण ऐसा है कि आज लक्ष्य में जो विकृति समा गई है, उसके निवारणार्थ परिवर्तन लाया जाये तो उससे केवल भारत का ही नहीं बल्कि समूचे विश्व का बड़ा लाभ हो सकता है। आज बिगाड़ का मूल कारण यही है कि लोगों का लक्ष्य भौतिकवादी बन रहा है। फिर आप वैज्ञानिक लोग भी उसमें सहायक हो जाते हैं। आज लोग (धर्म) सिद्धान्तों के बजाय साइन्स को अधिक मानते हैं।

रामाराव—(मुस्कराहट के साथ) वस्तुस्थिति यही है।

आचार्य श्री—आपने जो प्रश्न किये वे गूढ हैं, वे अन्य लोगों (श्रोताओं) के लिए भी लाभ-जनक हैं।

रामाराव—मेरी यह धारणा थी कि शुभ कर्म सर्वदा व सर्वथा ऊँचा ले जाने वाले ही हैं, किन्तु आज मैंने 'शुभ कर्म भी बन्धन हैं ?' यह नई बात समझी—और मुझे यह ठीक जँची।

इस प्रकार बहुत ही विवेचनात्मक वार्तालाप हुआ। उक्त वार्तालाप के पश्चात् आचार्य श्री ने कुछ देर डा० रामाराव को अणुव्रती संघ के विषय में बताया।

: २ :

दूसरे दिन ता० २७ को दोपहर में १॥ से २॥ बजे तक डा० रामाराव का आचार्य श्री के साथ निम्नाङ्कित वार्तालाप चला—

डा० रामाराव—यद्यपि दीक्षार्थी या दीक्षार्थिनियां जो वैराग्योन्मुख होकर दीक्षा ग्रहण करते हैं, यह उनके आत्मविकास का मार्ग अवश्य है—किन्तु उनके माता-पिता आदि परिजनों के हृदय में इससे जो दुःख होता है, उसे देखते उनका दीक्षा लेना कहाँ तक उचित है ?

आचार्य श्री—दीक्षा, माता-पिता आदि की स्वीकृति से दी जाती है, और जहाँ तक उनके मानसिक दुःख या जी दुखने का सवाल है, यह उनके अपने स्वार्थ-जनित मोह के कारण है, व्यक्ति स्वातन्त्र्य भी तो अपना एक विशेष स्थान रखता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित या लाभ सोचता है, यदि वह किसी प्रकार के हिंसात्मक साधनों का प्रयोग न करता हुआ विशुद्ध अहिंसात्मक उपायों से सच्चे सुख की उपलब्धि में अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का प्रयोग करता है तो इसमें कैसा अनौचित्य ? उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य पालना चाहता है, इसी में वह सुखानुभव करता है, इसी में उसको

आन्तरिक सन्तोष है। उसकी पत्नी की ऐसी इच्छा नहीं है अतः वह इससे नाराज होती है—क्या वह उसकी नाराजगी को लक्ष्य करते हुए अपने व्रत से च्युत हो जाये ?

रामाराव—इसमें दो पहलू हैं : एक आत्मदृष्टि, दूसरी पारिवारिक या सामाजिक दृष्टि। यदि किसी के अन्तस्तल में यह ठीक जंच जाये कि अमुक कार्य या प्रवृत्ति छोड़ना अच्छा है तो वह व्यक्तिगत स्वार्थ या आत्मलाभ की दृष्टि से उससे अलग रह सकता है, मगर जब एक ओर से विषय सामने हों तो उसे सोचना चाहिए कि मुझे पारिवारिक हित भी देखना है, यह देखते उसे अंगीकार करना होता है।

आचार्य श्री—व्यवहार दृष्टि से हम अब्रह्मचर्य का त्याग पति-पत्नी दोनों की रजामन्दी से ही करवाते हैं—किन्तु सिद्धान्ततः हम यह स्वीकार करते हैं—जब एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पूर्णतया इच्छुक है तो उसके लिये बाधा क्यों ?

रामाराव—भारतीय विचार-धारा तो ऐसी ही रही है, पाश्चात्य नहीं।

आचार्य श्री—जहाँ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का महत्त्व है वहाँ तो यह विचारधारा रहेगी ही। ऐसे विचारों से कोई दुःखी बने, यह उनकी कमजोरी है, वे अपने स्वार्थ-व्याघात से दुःखी बनते हैं। उदाहरणार्थ—जब आचार्य भिक्षु रघुनाथ जी से पृथक् हुए तब उनके (रघुनाथजी के) आंखों से आंसू आने लगे—क्यों कि उनका एक परम योग्य शिष्य पृथक् होता था, ऐसी स्थिति में क्या उन्हें ठीक

रास्ता नहीं लेना चाहिये था ? वही बात दीक्षार्थी के लिये है। आचार्य भिक्षु के सामने जब यह (रघुनाथ जी की आंखो में आंसू आने का) प्रसंग आया तो उन्होंने सोचा कि जब मैंने दीक्षा ली थी तब मेरी माता जी को भी तो मोह से रोना आगया था, तब भी मैंने अपने को मोहदुर्बल नहीं बनाया तो अब क्यों बनाऊँ, सत्यमार्ग क्यों नहीं ग्रहण करूं।

रामाराव—आपका फरमाना बिल्कुल यथार्थ है।

आचार्य श्री—पाश्चात्य लोग इस बात को हृदय में स्थान इसलिये नहीं देते कि उनके यहाँ दीक्षा या संन्यास जैसी कोई चीज नहीं है।

रामाराव—इससे ऐसा तो कहा जायेगा कि सब को छोड़कर संन्यस्त बन जाये, यह व्यक्तिगत स्वार्थपरता है।

आचार्य श्री—जैसा कि मैंने कल की बात-चीत में बताया, आत्मसाधना स्वार्थपरता नहीं, बल्कि परमार्थ है। तिस पर भी वह (संन्यस्त व्यक्ति) समाजोत्थान (नैतिक उत्थान) का भी प्रयत्न करता है, ऐसी स्थिति में एकमात्र व्यक्तिगत स्वार्थ कैसे हुआ ?

रामाराव—सब साधु संन्यासी तो ऐसे नहीं होते, मैं समझता हूँ ऐसा नहीं करने वाले एक तरह से भार हैं।

आचार्य श्री—साधु का जीवन साधना का प्रतीक है। उसमें अनिवार्यतः साधना होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं तो वे साधु-वेष को विडम्बित व विलज्जित करते हैं। हमारा पूर्व कथन उन साधुओं को उद्दिष्ट करके था जो साधुत्व में चलते हैं।

बुद्ध, महावीर, ईसामसीह आदि महापुरुष घरवालों के मोह का विचार न करते हुए अपने अपने पथों पर अग्रसर हुए। यदि परिजनों का जी दुखने से डरते हुए अपने गन्तव्य पथपर नहीं जाते तो संसार को उनके मननीय विचार कैसे प्राप्त होते। आज साधुवर्ग की स्थिति कुछ प्रतिकूल-सी है, वे बड़े बड़े मठों, स्थानों व आश्रमों के अधिपति बने बैठे हैं।

रामाराव—कई साधु-संन्यासी तो ऐसे हैं जिनके राजामहाराजाओं की तरह बड़े मूल्यवान् व विशाल प्रासाद हैं।

आचार्य श्री—जब हम यह सुनते हैं तो हमारे दिल में बड़ी ठेस पहुँचती है। भारतीय साधु-संन्यासियों का इतना उच्च व गौरवपूर्ण स्थान त्याग-तितिक्षा के कारण है, भोग-लिप्सा के कारण नहीं। यदि वे त्याग व तपस्या के आदर्श साधु सांसारिकता में लिप्त रहते हैं तो यह बड़ी शोचनीय बात है।

रामाराव—क्या मेरा यह सोचना ठीक है कि यद्यपि जैन साधुओं ने अपने आत्मा के लाभ या विकास के लिये संसार छोड़ा है, मगर उनसे संसार यदि कुछ लेना चाहे तो उसे कुछ देना उनका कर्तव्य है?

आचार्य श्री—हां, मैंने तो यहाँ (हांसी में) आते ही आम जनता में कहा था कि मेरा जीवन सर्वथा सार्वजनिक है, जो कोई मेरे से कुछ लाभ लेना चाहें—वे खुशी से लें, यदि यह भावना न होती तो सहस्रों मीलों की पैदल यात्रा करते हुए हम क्यों विचरण करें।

रामाराव—जो साधु नहीं हैं, उनके लिये अणुव्रतों का पालन विहित है। इस विषय में मेरा यह सुझाव है कि अणुव्रत-ग्रहण व्यक्तिगत न होकर परिवारगत हो। इससे परिवार भर का वातावरण एक तरह का रहेगा; पालने में अधिक सुगमता होगी, अन्यथा कठिनाइयाँ आयेंगी।

आचार्य श्री—सुझाव अच्छा है--यदि परिवार की जगह इसका समाजगत ग्रहण हो तो और भी अच्छा रहे–किन्तु फिर भी कई नियम ऐसे हैं–जो व्यक्ति से सम्बन्ध रखते हैं। नियमों को लेने वाला अपने समूचे जीवन को सामने रखता हुआ इनको लेता है। परिवार के सभी सदस्यों की मानसिक दृढ़ता या आत्मबल एकसा नहीं होता। अतः सब पर लादे नहीं जा सकते। परिवार के सभी सदस्यों की सहमति न होनेपर एक व्यक्ति चाहता हुआ भी नहीं ले सकेगा; कारण कि परिवारगत नियम रहने से जब तक सारा परिवार राजी नहीं तब तक व्यक्ति की इच्छा का कोई मूल्य नहीं होगा। अतः वह एक व्यक्ति चाहता हुआ भी वञ्चित रहेगा। यदि व्यक्तिगत अणुव्रत ग्रहण की परम्परा रहेगी और यदि एक व्यक्ति अणुव्रती बन जायेगा तो उसे चिन्ता रहेगी कि वह अपने पारिवारिक जनों को भी अणुव्रती बनाये। अणुव्रती संघ के प्रचार का यह भी एक तरीका रक्खा गया है कि प्रत्येक अणुव्रती पाँच अन्य व्यक्तियों को इसके लिये तैयार करे। यदि डाक्टर साहब अणुव्रती बनेंगे तो डाक्टर साहब को भी यह वजन दिया जायेगा।

रामाराव—मेरा एक सुझाव यह है कि सब साधु जहाँ जहाँ विचरण करते हैं उनका पूरा विवरण सभा को रखना चाहिये। अणुव्रती संघ के विषय में मेरी यह भावना है कि वह केवल भारत में ही नहीं बल्कि समस्त संसार में फैले।

आचार्य श्री ने श्री माधवा गणी के हाथ का (एक पत्र में) लिखा सटीक अनुत्तरोपपातिक सूत्र दिखाया तथा सूक्ष्म लिपि के अन्य पत्र भी दिखाये—जिस पर डा. रामाराव ने कहा—ऐसा लिखना (Printing) से भी संभव नहीं है। यह लेखकों की आत्म-एकाग्रता की अद्भुत शक्ति का द्योतक है।

रामाराव ने पूछा—साध्वियां (इन दिनों) किन किन ग्रन्थों का अध्ययन करती हैं?

आचार्य श्री—न्यायकर्णिका, तर्कसंग्रह, पञ्चानन्द महाकाव्य आदि।

रामाराव—शिक्षा व कला पर क्या आप कला की दृष्टि से जोर देते हैं?

आचार्य श्री—इनको भी हम एक प्रकार का आध्यात्मिक विकास मानते हैं।

रामाराव—क्या अनुशासन के विषय में साधु तथा साध्वियाँ समान हैं?

आचार्य श्री—हाँ, समान हैं।

रामाराव—क्या कोई साध्वी योग्य हो तो वह सिद्धान्ततः आचार्य के पद की अधिकारिणी हो सकती है?

आचार्य श्री—हां, हो सकती हैं।

रामाराव—क्या साध्वियों की शिक्षा साधुओं से कम है ?

आचार्य श्री—यदि तुलनात्मक रूप में देखें तो कम है, किन्तु जिस विशेष प्रयत्न व अदम्य उत्साह के साथ साध्वियों का विद्याभ्यास चालू है उसे देखते लगता है कि शीघ्र ही समानता हो जायेगी।

रामाराव—उनके विकास से संसारगत महिला समाज पर एक अमिट प्रभाव पड़ेगा।

आचार्य श्री—हमारे संघ में इस वक्त प्रायः कोई भी साध्वी अशिक्षिता नहीं है।

रामाराव—आपने महिलावर्ग को भी जो समान स्थान दिया है इसका दुनिया पर बड़ा असर होगा।

: ३ :

तीसरे दिन ता० २८ को मध्यान्होत्तर डा० रामाराव से १॥ बजे से २॥। बजे तक आचार्य श्री के साथ निम्न-लिखित वार्तालाप हुआ।

रामाराव—यदि दीक्षा के पश्चात् सिद्धान्तों में किसी के मत भेद हो जाये तो क्या वह संघ में रह सकता है ?

आचार्य श्री—समाधान करने की—समझाने की कोशिश की जाती है। फिर भी उसके यदि जँचता नहीं है तो वह संघ में नहीं रह सकता।

रामाराव—मेरा अभिप्राय यह है कि उसे किसी शास्त्रीय प्राचीन अर्थ में शंका हो जाये और वह उस स्थल का नया अर्थ लगाये तो क्या वह उसके अनुसार चल सकता है ?

आचार्य श्री—संघ की मर्यादा यह है कि यदि इस प्रकार की बात हो, तो वह आचार्य से निवेदन करे। आचार्य उस स्थल का विशेषतः मनन करके समाधान करेंगे। फिर भी उसे यदि वह समाधान नहीं जचता है तो उसे संघ में नहीं रक्खा जा सकता। आद्य आचार्य श्री भिक्षुगणी की ऐसी ही वैधानिक मर्यादा है।

आचार्य श्री—भिक्षु ने संघ का जो दूरदर्शितापूर्ण व विवेक-सम्मत विधान एकाकी बनाया उसे देखते यह प्रतीत होता है कि वे एक बड़े नीतिविद् व दूरदर्शी थे। आज विधान बनाने के लिये सैंकड़ों हजारों आदमियों की पार्लियमेण्टें बैठती हैं। लाखों आदमियों की संस्था का विधान एक व्यक्ति बनाये और आज सैकड़ों वर्ष होने को आये—उस विधान पर लोग चल रहे हैं, यह विधान की तात्त्विकता व विज्ञानशीलता का परिचायक है। विधान की मौलिक विशेषता यह है कि हमारे दिमाग में उसे बदलने का खयाल तक नहीं आता। वह आज के युग में भी उतना ही उपयुक्त साबित हो रहा है, जितना उस समय था जब कि यह बनाया गया।

रामाराव—यहां दो को मानना होता है—जैनसिद्धान्त को व आचार्य को ?

आचार्य श्री—आचार्य का आदेश सिद्धान्तानुकूल होता है। आचार्य एक प्रकार से सिद्धान्तों का प्रतीक है।

रामाराव---यदि आचार्य की आज्ञा सिद्धान्तविरुद्ध हो तो ?

आचार्य श्री---यदि वस्तुतः ऐसा हो तो आचार्य को हटाया जा सकता है। हमारे यहां कोई नाजिज्म नहीं है कि मुंह से आया सो कह दिया और वही सर्वमान्य हो गया। तभी तो हमारे यहां एक तन्त्रवाद के साथ साथ जनतन्त्रवाद का समन्वय है।

तत्पश्चात् आचार्य श्री ने विधान, लिखत आदि दिखाये और संक्षिप्त रूप में उनका आशय समझाया। स्वामीजी के जीवनवृत्त पर संक्षिप्ततः प्रकाश डालते हुए केलवा की अंधेरी ओरी की घटना तथा चित्र बताये।

रामाराव---जब दीक्षा होती है तो क्या दीक्षार्थी को यह प्रतिज्ञा करनी होती है कि वह इस विधान को मानेगा ?

आचार्य श्री---हाँ, इन लिखतों के साररूप में एक संक्षिप्त लिखत है, उस पर दैनिक हस्ताक्षर भी करने होते हैं।

तदनन्तर आचार्य श्री ने डाक्टर साहब को स्याद्वाद का स्वरूप समझाते हुए बतलाया---

प्रत्येक वस्तु में अनेक विभिन्न धर्म होते हैं। यदि उसका (वस्तु का) प्रतिपादन एकांगी दृष्टिकोण से किया जायेगा तो वह ठीक नहीं होगा। अतः प्रत्येक वस्तु को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखना और भिन्न दृष्टियों से उसकी सिद्धि करना स्याद्वाद या अनेकान्तवाद है।

उदाहरणस्वरूप---एक प्रसंग को हम लें---एक दर्शन कहता है: संसार नित्य है। दूसरा कहता है: अनित्य है। किन्तु जैन दर्शन

इसका समन्वय संसार को नित्यानित्य मानते हुए करेगा। यहाँ दो अपेक्षाओं को लेना होगा—द्रव्यापेक्षा से संसार नित्य है–क्योंकि द्रव्य का द्रव्यत्व रूप में कभी विनाश नहीं होता। किन्तु पर्याय समय-समय (काल का एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिमाण) बदलते रहते हैं। अतः पर्यायापेक्षा से संसार अनित्य है। दो भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से दो भिन्न प्रकार की सिद्धि होती है। इसी दृष्टि से संसार की समस्त वस्तुओं को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। यदि कहें कि सब मनुष्य समान भी हैं और असमान भी, तो भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से इस की भी सिद्धि हो सकती है। मनुष्यत्व की दृष्टि से समान हैं, और राजस्थानी-महाराष्ट्री-बंगाली आदि अपेक्षाओं से असमान। एक दृष्टि से जड़ व चेतन को भी समान कह सकते हैं। यानी पदार्थत्व या वस्तुत्व की दृष्टि से तो जड़ व चेतन दोनों में भी साम्य है। चेतनत्व व जड़त्व की दृष्टि से दोनों में असमानता है। इसी प्रकार वस्तुएं हैं भी और नहीं भी। स्वस्वरूप से हैं, पर स्वरूप से नहीं। एक साथ अस्तित्व, नास्तित्व आदि का कथन नहीं किया ज़ा सकता, अतः वस्तुओं में अवाच्यत्व या अवक्तव्यत्व नामक धर्म भी है।

मैं डाक्टर साहब से पूछूंगा—क्या यह पुस्तक (आचार्य श्री के हाथ में एक पुस्तक थी) है या नहीं?

डा० रामाराव—दोनों हैं, यानी है भी और नहीं भी।

आचार्य श्री—हाँ, अपने रूप से यह है और पर रूप से नहीं। यदि पर रूप से किसी का अस्तित्व माना जाये तो फिर अनवस्था हो जाये, नियामकता ही क्या रहे। अस्तु; स्याद्वाद की दृष्टि

से संसार की वस्तुओं का—मत-मतान्तरों का—समन्वय किया जाये तो बहुत कुछ समाधान हो सकता है ।

संक्षेप में तात्पर्य यही है कि प्रत्येक वस्तु स्वस्वरूप से है, पर रूप से नहीं । एक ज्ञानी है तो वह अपने ज्ञान से, पर के ज्ञान से नहीं ।

रामाराव—तब ऐसा भी कहा जा सकता है साधु का जीवन है भी और नहीं भी ।

आचार्य श्री—ठीक है, जैन विधान से है और तद्व्यतिरिक्त अन्य विधानों से नहीं ।

रामाराव—जैन साधु त्यागी होते हुए भी आत्मसाधना में रत रहते हुए भी समाजोत्थान का काम भी करते हैं– किन्तु लोग इस बात को नहीं जानते, ऐसा क्यों है ?

आचार्य श्री—प्रचार की दृष्टि से यह नहीं किया जाता ।

रामाराव—ईसाई-मिशनरियों का जरा जरा सा कार्य भी प्रचार पा लेता है ।

आचार्य श्री—छोटी छोटी बातों व कार्यों भी प्रकाश में लाने का उनका खयाल रहता है ।

रामाराव—आपके संघ के अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायों में इतना त्याग व सेवा नहीं है । ईसाइयों में सेवा है, पर त्याग नहीं है । हिन्दुओं में यदि त्याग है तो सेवा नहीं है । वे हिमालय की कन्दराओं में चले जाते हैं ।

आचार्य श्री—दिल्ली में अणुव्रती संघ के अधिवेशन के बाद लोग हमें कुछ जानने लगे हैं।

रामाराव— वास्तविकता का प्रचार न होने से कई प्रकार की गलत फहमियां फैल सकती हैं। आपके जो विभिन्न सिंघाडे (Groups) देश के भिन्न २ भागों में विचरण करते हैं, यदि उनके विचरण का— उनके द्वारा क्रियमाण कार्यों का—विवरण संसार को ज्ञात हो तो बड़ा अच्छा असर हो सकता है। आपके यहां से ही यह जाना जा सकता है कि कितने साधु निःस्वार्थ भाव से जनता के नैतिक उत्थान के लिये इस प्रकार प्रयत्नशील हैं। यह कम महत्त्व की बात नहीं है।

: ४ :

ता. ११-९-५० को जबलपुर (मध्यप्रदेश) में "डॉक्टर के० जी० रामाराव द्वारा दिया गया भाषण—

"मैं मुनि श्री जशकरणजी और उनके साथ दोनों सन्तों को वन्दना करता हूँ, जिनके दर्शन मैंने श्री बी. सी. नाहर के सौजन्य से किये थे। मुनि श्री जशकरणजी ने मुझे जैन साधुओं का आचार-विचार व नियम पूर्णतया समझाये। श्री बी. सी. नाहर तथा जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा (जबलपुर) की प्रेरणा से मुझे आचार्य श्री के दर्शनों के लिये हाँसी जाने का मौका मिला। मैं हांसी आचार्य श्री व साधुओं की परीक्षा करने नहीं गया था किंतु जो कुछ मेरी शंकाएँ थीं, वहां जाकर उनका समाधान करना जरूरी था। आचार्य श्री ने उनके विषय में मुझे पूर्णतया समझाया। ऐसे तो अहिंसा का

प्रचार महात्मा गांधी ने भी किया था। मगर पूरी दुनियां ने उसे नहीं अपनाया। इसी लिए विश्व में लालच, कपट और हिंसा की अग्नि प्रज्वलित है। जनों में अहिंसा पालन के दो मार्ग हैं—एक तो पञ्च महाव्रतमय मार्ग जो अहिंसक जीवन का पूर्ण प्रतीक है, दूसरा गृहस्थों के लिये अणुव्रती संघ। इसके नियम बहुत ही महत्त्व-पूर्ण हैं, जैसे किसी दूसरे देश में नहीं पाये जाते।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के साधु दुनियाँ को छोड़ कर भी दुनियाँ का कल्याण करने के लिये भरसक कोशिश करते हैं। हर एक मनुष्य संसार नहीं त्याग सकता। क्योंकि वह सांसारिक बन्धनों में फँसा हुआ है। मगर वह इन बन्धनों से छुटकारा चाहता है और उसका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। हो सकता है कि इसी जीवन में हम मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु फिर भी सत्क्रिया करने से पुनर्जन्म लेने के बाद मोक्ष-प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं। त्यागी तो दुनियाँ में बहुत से पाये जाते हैं जिनका जीवन स्वार्थ में है। कोई संसार त्याग कर जंगल में जा कर एकान्त तप करते हैं। उन में दुनियाँ का कल्याण करने की भावना नहीं रहती अथवा ईसाई पादरियों जैसे त्यागी अवश्य मिलते हैं जो अपना स्वार्थ छोड़ दुनियाँ को ऊँचा बनाने की कोशिश करते हैं, किन्तु उनका अपना जीवन बहुत सुख व भोगों में रहता है।

मैं यह फिर कहना चाहता हूँ कि श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी साधु संसार त्याग कर चुके हैं पर संसार का कल्याण करने के लिये

हर तरह का प्रयत्न करते हैं और इसी लिये आचार्य श्री ने अणुव्रती संघ की महत्वपूर्ण योजना तैयार की है जिससे हम संसार के बन्धनों से अपने आपको ऊँचा उठा सकें—मुक्त हो सकें। मनुष्य अपने से दूर की चीजों की या अपने पड़ोसी की ज्यादा जानकारी करना चाहता है और सूर्य, चन्द्रमा, तारे वगैरह की खोज करने के प्रयत्न करता है परन्तु वह अपने अन्दर क्या है, उसकी पहचान नहीं करता। यह उसकी सब से बड़ी भूल है।

आचार्य श्री ने अणुव्रती संघ में जाति-पाँति का कोई भेद नहीं रखा है, जो कुछ वे कहते हैं या जिसका प्रचार करते हैं वे उसे अपने जीवन में उतारते हैं। आचार्य श्री ने इन सभी विषयों के सम्बन्ध में मुझे बहुत अच्छी तरह समझाया।

ऐसे तो बहुत से दुनियाँ में कानून हैं, सरकारी प्रतिबन्ध हैं जिन्हें हम को जबर्दस्ती मानना पड़ता है और जिनके मनाने के लिये हमारे लिये पुलिस भी मौजूद है। यदि हम उन्हें तोड़ते हैं तो हमें सजा भी मिलती है। किन्तु यह सब होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति कानून नहीं मानता। और इसीलिये चोरबाजारी सरीखे अपराध होते हैं। मनुष्य को जब तक किसी चीज में श्रद्धा नहीं होती तब तक वह उसे हृदय से नहीं मानता। हमारे अन्दर ऐसी एक शक्ति है, जो हमें कार्य में प्रवृत्त होने से पूर्व उसे करने या न करने का प्रोत्साहन देती है। इसीलिये आचार्य श्री ने—व्यक्ति अपने आपको अन्दर से पहिचाने, इस लक्ष्य से अणुव्रती संघ और आत्म चिन्तन को श्रेष्ठ बतलाया है। जहाँ तक मैं सोचता हूँ ये साधु

तो अपनी आत्मा का उद्धार बहुत ही तेज गति से कर रहे हैं किन्तु यदि साँसारिक व्यक्ति भी अणुव्रती संघ के नियमों का पालन करें तो उनका जीवन भी सुखी व आदर्श बन सकता है।

: ५ :

ता. ५।१०।५० को मध्यान्ह में १२॥ बजेसे १॥ बजे तक हाँसी में डॉ० हर्बर्ट टिसि द्वारा आचार्य श्री से किये गये प्रश्नोत्तर—

डॉ० हर्बर्ट–पाश्चात्य देशों का यद्यपि भौतिक विज्ञान की ओर बहुत अधिक झुकाव है किन्तु इस समय वे कुछ कुछ आध्यात्मिकता की ओर झुकते हुए स प्रतीत होते हैं। वर्तमान गति-विधि देखते पाश्चात्य देशों में कम्यूनिज्म का प्रसार होगा या अध्यात्मवाद का, आपको कैसा लगता है?

आचार्य श्री—अध्यात्मवाद वास्तविक, व्यापक व स्थायी सुख का कारण है, अध्यात्मवाद से आत्म्यमान सुख शास्वत है और पर पदार्थ निरपेक्ष है। कम्यूनिज्म सामयिक मांग की पूर्ति करता है। वाह्य–भौतिक सुविधाओं का सामयिक हल है, ऐसी लोगों की मान्यता हैं। जब कि यूरोपीय या पाश्चात्य दृष्टिकोण अब तक भी जड़वादी व भूत-प्रधान है, तब ऐसा लगता है कि एक बार तो वहाँ जड़ प्राधान्य मूलक कम्यूनिज्म के प्रसार की ही अधिक सम्भावना है। हाँ, उसमें टिकाऊपन हो, यह सम्भव नहीं लगता।

डॉ० हर्बर्ट—क्या भारतवर्ष में भी कम्यूनिज्म का प्रसार होगा?

आचार्य श्री—भारतवर्ष अनादि काल से अध्यात्मप्रधान देश रहा है। भारतीय जीवन का मूल आधार आध्यात्मिकता है। आज भी आध्यात्मिकता सर्वथा उसके जीवन से परे: नहीं हुई है। आज की अवनत दशा में भी धर्म-भावना व अध्यात्म-मनोवृत्ति का अस्तित्व लुप्त नहीं हुआ है। अतः भारत में कम्यूनिज्म नहीं टिक सकता ऐसा मेरा विचार है।

डा. हर्बर्ट—चीन भी प्राचीन काल में एक आध्यात्मिक देश था। किन्तु आज वहाँ पूर्णतः कम्यूनिज्म का प्रसार है?

आचार्य श्री—वहाँ अध्यात्मवाद के पोषक साधनों का अभाव हो गया। पोषक साधनों के अभाव में उसका पोषण व पल्लवन रुक गया। फलतः वहाँ उसका एक प्रकार से अभाव-सा हो गया है। जिस प्रकार एक छोटे बच्चे के लालन-पालन की आवश्यकता होती है, जब तक कि वह जवान नहीं हो जाता, उसी तरह अध्यात्मवाद के पोषण की भी आवश्यकता थी। भारतवर्ष में आज भी उसको पोषण मिल रहा है। तथा भारतीय जीवन में तो रग-रग में उसका अव्यक्त अस्तित्व तो व्याप्त है ही।

डा० हर्बर्ट—आप जो धर्म-भावना का प्रसार कर रहे हैं, क्या उससे कम्यूनिज्म को दबा लेंगे? जब कि आपके पास बाह्य-साधनों का (प्रचारात्मक) अभाव है?

आचार्य श्री—हमारे प्रचार का आधार सच्चाई व वास्तविकता है। हमारा ऐसा खयाल है कि जो कार्य सचाई, ईमानदारी व वास्त-विकता को सामने रखते हुए होगा, वह स्थायी तथा प्रभावशाली

होगा। उसमें सफलता भी मिलेगी। हो सकता है बाह्य साधनों के अभाव में वह उतनी शीघ्रता से न हो। फिर भी सत्य के पीछे सफलता है। दूसरी बात यह है कि हमारा उद्देश्य संख्या बढ़ाना नहीं है, जैसा कि कम्यूनिष्टों का है। हमारी ऐसी धारणा है कि यदि एक एक व्यक्ति समझे तो भी अच्छा है, जितने समझेंगे, उनकी आत्मा का तो उत्थान होगा। व्यक्ति सुधार ही समष्टिसुधार का जनक है।

डा. हर्बर्ट—तिब्बत में पुनर्जन्म के विषय में ऐसा विश्वास है कि एक दलाई लामा (प्रधान लामा—बौद्ध गुरु—शासक) की जब मृत्यु हो जाती है, तो उसी की आत्मा आगे होनेवाले लामा में प्रविष्ट हो जाती है। क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि विगत आचार्य की आत्मा भावी आचार्य में प्रविष्ट हो जाती है और इस प्रकार वह विगत आचार्य ही अग्रिम आचार्य के रूप में आता है?

आचार्य श्री—हमारा ऐसा विश्वास नहीं है। किन्तु हाँ, उसी तरह की आत्मा (ओजस्वी, शक्तिशाली, वर्चस्व) आ जाती है। वह गत आचार्य ही अग्रिम आचार्य के रूप में आते हैं—वही आत्मा आती है, ऐसा हम नहीं मानते।

डा. हर्बर्ट—लगभग ५० वर्ष पूर्व रोमन कैथोलिक सम्प्रदायवालों में ऐसी भाव-धारा उत्पन्न हुई कि वे जो कुछ कहते हैं—वह सर्वथा मान्य, विश्वसनीय व सत्य है। उसमें अविश्वास या भूल की कोई गुंजायश नहीं। किन्तु इस पर लोगों ने यह शंका रक्खी कि

मनुष्य से भूल का होना सम्भव है। क्या—आप भी आचार्य के विषय में ऐसा मानते हैं? अर्थात् वे जो कुछ कहते हैं, वह एकान्ततः भूल-शून्य ही होता है?

आचार्य श्री—यद्यपि संघ के लिये—अनुयायियों के लिये आचार्य ही एक मात्र प्रमाण हैं। उनका कथन-आदेश सर्वथा मान्य व स्वीकार्य होता है। किन्तु हम ऐसा नहीं मानते कि आचार्यों से कभी भूल होती ही नहीं। जब तक सर्वज्ञ नहीं होते तब तक भूल की सम्भावना रहती है। यदि ऐसा प्रसंग हो तो आचार्य को वह बात निवेदन की जा सकती है। वे उस पर उचित गौर करते हैं।

डा० हर्बर्ट—क्या कभी ऐसा काम पड़ सकता है जब कि एक पूर्वतन आचार्य के बनाये नियमों में परिवर्तन किया जा सके?

आचार्य श्री—ऐसा सम्भव है। पूर्वतन आचार्य उत्तरवर्ती आचार्य के लिये ऐसा विधान करते हैं कि देश, काल, भाव, परिस्थिति आदि को देखते हुए उत्तरवर्ती आचार्य व्यवस्थामूलक नियमों में परिवर्तन करना चाहें तो कर सकते हैं। किन्तु साथ साथ में यह ध्यान रहे—धर्म के मौलिक नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। वे सर्वदा व सर्वथा अपरिवर्तनशील हैं।

डा० हर्बर्ट—क्या जीव पुद्गल पर कुछ असर कर सकता है?

आचार्य श्री—हां, जीव पुद्गलों को अनुकूल-प्रतिकूल अनुवर्तित या परिणत करने का सामर्थ्य रखता है। जैसे—कर्म पुद्गल

हैं। जीव कर्म-बन्ध भी करता है और कर्म निर्जरण भी। इससे स्पष्ट है कि जीव पुद्गलों पर अपना प्रभाव डाल सकता है।

डा० हर्बर्ट– जीव मनुष्य के शरीर में कहाँ है?

आचार्य श्री–शरीर में सर्वत्र व्याप्त है। कहीं एकत्र—एक स्थान–विशेष पर नहीं। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है—जब शरीर के किसी भी अंग प्रत्यंग पर चोट लगती है, तत्क्षण पीड़ा अनुभव होती है।

डा० हर्बर्ट—जब सब जीव संसार-भ्रमण शेष कर लेंगे तब क्या होगा?

आचार्य श्री—बिना योग्यता व साधनों के सब जीव कर्म मुक्त नहीं हो सकते। जीव संख्या में इतने हैं कि उनका कोई अन्त नहीं है। उन में से बहुत कम जीवों को वह सामग्री उपलब्ध होती है, जिससे वे मुक्त हो सकें। जब कि संसार की स्थिति यह है कि करोड़ों लोगों में लाखों शिक्षित हैं, लाखों में हजारों विद्वान् या कवि हैं, हजारों में भी ऐसे बहुत कम हैं–जो स्वानुभूत बात कहनेवाले तत्त्वज्ञानी हों। तब अध्यात्मरत योगी संसार में कितने होंगे, इसी से समझा जा सकता है। ऐसी स्थिति में मोक्ष या मुक्ति जिसके लिये अध्यात्म साधना पूर्ण रूपेण अपेक्षित है, सब को प्राप्त हो जायगी। यह कब सम्भव है? तिसपर भी यदि कल्पना की जाय कि सब का मोक्ष हो जाय तो क्या हर्ज है? सारा झगड़ा व संघर्ष ही मिट जाय। किन्तु ऐसा होने का नहीं।

डा० हर्बर्ट—तब पुद्गल कहाँ रहेंगे ?

आचार्य श्री—पुद्गल आकाश में रहेंगे। वे तो जीवों के बिना भी इतस्ततः स्थितिमान् या गतिमान् रहते हैं। मनुष्य पुद्गलों की चिन्ता क्यों करे, वह अपने कर्म काटने की चेष्टा करे। कर्म काटने का कार्य बड़ा विषम है—खड्ग की धारा पर चलना है।

डा० हर्बर्ट—क्या इस उपलब्ध-दृष्ट जगत् के अतिरिक्त और भी जगत् हैं ?

आचार्य श्री—हाँ हैं।

डा. हर्बर्ट—क्या उन लोकों के प्राणी इस लोक में जन्म पा सकते हैं ?

आचार्य श्री—हाँ, पा सकते हैं।

डा. हर्बर्ट—क्या कभी ऐसा हो सकता है जब कि पिछली (पिछले जन्म की बातें) याद आ जायें ?

आचार्य श्री—हाँ ऐसा होना सम्भव है। इसे जाति—स्मरण ज्ञान कहते हैं।

डा० हर्बर्ट—क्या कभी ऐसा हुआ है जब कि किसी ने अपना पिछला जन्म देखा ?

आचार्य श्री—हाँ, आगमों में ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं। आजकल मैं जो आगम (आचारांग) बांच रहा हूं उस में इस प्रकार के बहुत से वर्णन हैं।

डा० हर्बर्ट—समस्त विश्व सान्त है या अनन्त ?

आचार्य श्री—विश्व के दो विभाग हैं—लोक और अलोक। यदि दोनों को लें तो अनन्त हैं और यदि केवल लोक को लें तो वह सान्त है। अलोक में केवल आकाश मात्र है। उसे अलोकाकाश कहते हैं। वह अनन्त है। लोक में आकाश के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ भी हैं। लोक-अधिष्ठित आकाश का नाम लोकाकाश है। वह सान्त है।

डा० हर्बर्ट—जब आत्मा शरीर छोड़ कर जाती है तब वह किस आकार में जाती है ?

आचार्य श्री—आत्मा या जीव का तो कोई आकार होता ही नहीं। हां, संसारी जीव जब पार्थिव शरीर को छोड़ कर जाते हैं, तब उनके कार्मण व तैजस शरीर उनके साथ रहते हैं। शरीर (पार्थिव) छोड़ कर जाने की दो पद्धतियाँ मानी गई हैं—एक वह जिससे गोली के भड़ाके की तरह जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुंच जाय। दूसरी पद्धति यह है कि जिस शरीर को छोड़कर जीव दूसरे शरीर में जाता है उस छोड़े जाने वाले शरीर से आगे ग्रहण किये जाने वाले शरीर तक आत्म-प्रदेशों का मकड़ी के जाले की तरह ताना-बाना-तन्तु-जाल फैल जाता है। आत्म-प्रदेश उधर जाते रहते हैं और उनका प्रत्यावर्तन होता रहता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कभी कभी मरणावस्था में नाड़ी कुछ देर के लिये चली जाती है और फिर आ जाती है, फिर चली जाती है। यह ताना-बाना की प्रक्रिया मारणान्तिक समुद्घात में होती है।

डा० हर्बर्ट—उसमें कितना समय लगता है?

आचार्य श्री—अन्तर्मुहूर्त की अवधि मानी गई है।

डा० हर्बर्ट—क्या ताना-बाना तोड़े बिना किसी जीव के आत्म-प्रदेशों का अपने निश्चित शरीर से बाहर प्रसार हो सकता है?

आचार्य श्री—हां हो सकता है। जैसे अल्प-आयुष्य और उपभुज्यमान अधिक कर्म-सञ्चय के कारण केवली के आत्म-प्रदेश अखण्ड भूमण्डल में फैलते हैं। वे आत्म-प्रदेश उस शरीर में रहते हुए सर्वत्र प्रसृत होते हैं। इस प्रक्रिया का नाम केवलि-समुद्घात है। प्रत्येक *आत्मा के आत्म-प्रदेश इतनी मात्रा में* (परिमाण में) होते हैं कि वे समस्त लोक में फैल सकते हैं आदि।

इन इन विषयों के अतिरिक्त आचार्य श्री ने इनको नवकार मन्त्र का अर्थ तथा कतिपय अन्य ज्ञातव्य बातें भी समझाई।

: ६ :

७-१०-५० को हांसी में डॉ० हर्बर्ट टिसि द्वारा दिया गया भाषण—

"आज हमने हमारा आत्म-विश्वास खो दिया है। हम रास्ता भूले-से हैं। हमने जो मार्ग अपना रक्खा है, वह हमें राहत व शान्ति देगा, ऐसा नहीं लगता। इन्हीं विचारों से प्रेरित हो मैं भारत में वह चीज पाने आया, जो यूरोप में नहीं पा सकता। धर्म व दर्शन के क्षेत्र में जो कुछ भारत से मिल सकता है वह

अन्यत्र नहीं। भारत के अपने अनुपम आदर्श हैं—आकर्षक विशेषताएँ हैं। अब संसार को नैतिक व आध्यात्मिक नेतृत्व या पथ-दर्शन की आवश्यकता है। आज क्या अमेरिका व क्या दूसरे यह मानने लगे हैं कि संसार का आध्यात्मिक नेतृत्व यदि कोई करेगा तो वह एशिया ही करेगा और उसमें भी मुख्यतः भारतवर्ष।

भारत के विभाजन से पूर्व हमारा यह खयाल था कि भारतवर्ष में जहाँ टैगोर व गान्धी जैसे ऊँचे सिद्धान्तों वाले व्यक्ति उत्पन्न हुए, वहाँ सभी लोगों के जीवन में वही उच्चता व आदर्श होगा, किन्तु विभाजन के समय घटित घटनाओं को देखने पर यह अनुभव किया—आज भारतीय लोग भी वैसे ही बन गये हैं, जैसे और। हमारे में और उन में क्या अन्तर रहा है। जहाँ हम हिंसक भावना को प्रश्रय देनेवाले हैं, वहाँ उन्होंने भी तो वैसा ही किया।

मैं चाहता हूं कि भारतीय धर्मों पर एक पुस्तक लिखूँ, इसी लिये मैं भारतवर्ष आया और भारत के विभिन्न धर्म स्थानों में गया। मैं दो बार पहले भी भारत आ चुका हूँ। पिछली दफा मैं कैलाश गया था जिसके विषय में मैंने जर्मन भाषा में एक पुस्तक भी लिखी है—जिसका अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। अब की मैंने केदारनाथ व बद्रीनाथ की यात्रा की। मेरे यात्रा करने का लक्ष्य केवल प्राकृतिक सौन्दर्य देखना नहीं था, बल्कि भारत के मानसिक सौन्दर्य का भी पता लगाना था।

दिल्ली में मैंन अपने कई मित्रों के आगे जैनधर्म के विषय में वहुत कुछ जानने की इच्छा की। उन्होंने मुझे हांसी आने का संकेत किया। जब मैं यहाँ पहुँचा, तब तक मुझे आशा नहीं थी कि मैं जो जैनधर्म से लगभग अनभिज्ञ सा हूँ, इतना जान सकूंगा। किन्तु यहाँ मैंने आचार्य श्री के सम्पर्क से ४-५ दिनों के थोड़े से समय में वहुत कुछ जाना। मैं जो कुछ यहाँ कह रहा हूँ वह सभ्यता के नाते नहीं वल्कि मेरे हृदय के सच्चे उद्गार प्रकट कर रहा हूँ।

हांसी के मेरे जो संस्मरण हैं, वे मेरे जीवन के सत्य अनुभव हैं। आचार्य श्री, जिनके सम्पर्क में मैं आया, वास्तव में महान् व प्रौढ व्यक्तित्वान् महापुरुष हैं। उनकी गम्भीर व वर्चस्व आकृति उनके आत्म-ओज तथा महानता की संसूचक है। जब उनसे उनके अनुयायी श्रद्धालु नागरिक तत्त्व-चर्चा करते हैं तब मैं भाषा न समझता हुआ भी मुख-मुद्रा से उनके औदार्य, प्रौढ़ता व मनस्विता को समझने में अपने आपको असमर्थ नहीं पाता, तथा यह देखता हूँ कि नेता व अनुयायियों में कितना सुन्दर, सात्विक सम्बन्ध है। नागरिक उनके पास उसी तरह आदर व श्रद्धा के साथ आते हैं, जिस तरह बच्चे अपने पिता के पास। आपके आदेशानुगत साधु साध्वियों की उच्चतम आचार परम्परा व त्यागपूर्ण जीवन-चर्या देखते ऐसा लगता है कि संसार में ऐसे उदाहरण वहुत कम हैं। उनके जीवन की विशेषता यह है कि जैसा वे कहते हैं, वैसा ही वे करते हैं। उनके जीवन में बाहरी शान शौकत व प्रदर्शन नहीं, वह सरलता व सात्विकता का प्रतीक है। जैन—तेरापन्थ के अहिंसामूलक सिद्धान्त विश्वशान्ति व

विश्वमैत्री के सिद्धान्त हैं। संसार में इनका अधिकाधिक फैलाव विश्व शान्ति का साधक होगा—ऐसा मेरा विश्वास है। मैंने एक उल्लेखनीय विशेषता यह देखी कि ये संख्या को महत्त्व नहीं देते—गुण को महत्त्व देते हैं, जो वास्तव में महत्त्व देने की चीज है।

अन्त में मेरी यही विनम्र भावना है कि पत्रकार के नाते जो कुछ मैं कर सकता हूँ, यूरोप में इन विश्वजनीन सिद्धान्तों के प्रसार के लिए करूंगा।"

नया प्रकाशन :

- विश्वस्थिति
- धर्मबोध (प्रथम भाग)
- धर्मबोध (दूसरा भाग)
- मेरा-युग
- बापू
- सचित्र श्रावक प्रतिक्रमण
- पदार्थवाद
- आत्म-साधना
- युगधर्म तेरापन्थ
- तीन संदेश
- त्याग
- अणुव्रती संघ और अणुव्रत
- 'ज्ञानकण' आदि
- सन्देश (प्रवचन संग्रह)
- स्वास्थ्य बोध
- आत्मालोचन

शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं—

जैन सिद्धान्त दीपिका, अहिंसा और उसके विचारक, शिक्षाषण्णवतिः कर्तव्य षट्त्रिंशिका च, श्रावक-प्रतिक्रमण (विवेचन सहित) आदि ।